



# विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujain@gmail.com

vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujain.com

## ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति के विकास का कल

चंद्रभूषण अवस्थी

वेदांग वैज्ञानिक ज्ञान के विकास में एक पथ के परिचायक रहे हैं। वेदांग की संख्या छह है—शिक्षा (उच्चारण विज्ञान), व्याकरण, निरुक्त (व्युत्पत्ति विज्ञान), कल्प (अनुष्ठान), छन्द (काव्यशास्त्र) और ज्योतिष। इन्हें षडांग भी कहते हैं। इन्हें श्रुतिग्रन्थ भी कहते हैं। आधुनिक दर्शनशास्त्र में वेदांग के समान उपनिषदों का भी महत्व काफी है। उपनिषदों की सामान्य संख्या 108 बतायी जाती है। इनमें से मात्र 13 को सबसे प्राचीन माना जाता है। उपनिषदों का रचनाकाल ई.पू. सातवीं और चौथी शती के बीच माना जाता है। विद्वानों का विचार है कि वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् की सबसे पहले रचना ई.पू. 7वीं शताब्दी के दौरान हुई थी। उपनिषदों में वर्णित कई गुरुओं का ऐतिहासिक महत्व है। उपनिषद् एक एकीकृत शिक्षा के ढाँचे के भीतर विश्व की व्याख्या करने के प्रथम प्रयास के परिचायक हैं। उपनिषदों का सार है। आत्मा ब्रह्म है, ब्रह्मा आत्मा है। उपनिषदों का कर्मसिद्धान्त भारतीय धर्म का एक बुनियादी सिद्धान्त बन गया। पाणिनि का अष्टाध्यायी आज भी व्याकरण की दृष्टि से सराहा जाता है। तक्षशिला प्रथम विश्वविद्यालय था जहाँ कौमारभृत्य जीवक ने आयुर्वेदाचार्य की शिक्षा प्राप्त की थी। नगर विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मापदंड होता है और यह अवधारणा पूरे विश्व में आज भी कायम है। नगर निर्माण का नहीं खत्म होनेवाला सिलसिला बुद्ध के जमाने से प्रारम्भ हुआ। कृषि वर्षा पर पहले आधारित थी और आज भी है। कृषि तकनीक की स्थिति भी लगभग पहले जैसी ही है। ई.पू. छठी शताब्दी का काल दार्शनिक क्रान्ति का युग कहा जाता है। इस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दर्शन और बेहतर लौह उपकरणों के क्षेत्र में है। लोहे के हल की मदद से उस जमीन पर भी खेती शुरू की जा सकी। जहाँ पत्थर का फाल काम नहीं देता था। लोहे की कुल्हाड़ी ने खेतों के लिए जंगल साफ करने का काम आसान बनाया। लौह उपकरणों की उच्च उत्पादनशीलता से सामाजिक विकास की गति भी अनिवार्यतः तीव्र हुई। पक्षी फाँसने के लिए लाल घोड़े की पूँछ से जाल बनाने का आविष्कार इसी समय हुआ। बौद्ध धर्म के कारण भारत को विश्व स्तर पर ख्याति मिली। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के उपदेशक महावीर जैन और गौतम बुद्ध आज भी जीवित हैं। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में बुद्ध और बिम्बसार का समकालीन कौमारभृत्य जीवक के योगदान से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान प्रभावित है। जिन जनपदों और नगरराज्यों का उदय और विकास हुआ उनमें से कई का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अस्तित्व आज भी कायम है। इसी शताब्दी ने पूरी दुनिया को प्रजातंत्र का पाठ पढ़ाया। कष्टपूर्ण और विलासपूर्ण जीवन का त्याग का आदर्श आज भी सर्वाधिक स्वीकृत आदर्श है। बुद्ध ने लोगों की समानता का विचार प्रस्तुत किया। गंगा नदी के किनारे नगरीकरण का द्वितीय चरण फला-फूला। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में जो भी विकास कार्य हुए वह आज भी किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। पालि और प्राकृत के कई शब्दों ने आधुनिक हिन्दी में स्थान पाया। भोजपुरी में पालि के कई शब्द मिलते हैं। इस समय से सिक्के डालकर बनाए जाने लगे। शीतज्वर, सिरोरोग, नेत्ररोग, दादरोग, वातरोग, गठिया, पांडुरोग आदि जिन बीमारियों से लोग बौद्धकाल में पीड़ित थे उनकी उपस्थिति आधुनिककाल में देखी जा सकती है। इस काल में वैसी दार्डि या परिचायक को योग्य माना जाता था जो औषध को ठीक से बनाने में निपुण, अनुकूल और प्रतिकूल के भेद को समझनेवाला, रोगी का मल-मूत्र, कफ एवं वमन उठाने में घृणा नहीं करनेवाला, रोगी को कहानियाँ सुनाकर मन बहलानेवाला और रोग को सहने का साहस बंधाते रहनेवाला होता था। पेशेवर चिकित्सक उत्तर वैदिककाल से पाए जाने लगे। उन्हें भिषज कहते थे। परिचायक की परम्परा आधुनिककाल में बनी हुई है। आजीवक दर्शन एक अरुद्धिवादी मत था जिसका जन्मदाता गोशाल मखलिपुत्र महावीर जैन का समकालीन था। वह आत्मा के अस्तित्व को

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति  
के विकास का कल  
चन्द्रभूषण अवस्थी

पृष्ठ क्र. 3-4

अस्त्र-शास्त्र और सामरिक  
शक्ति का बोध  
अमित कुमार बिसेन

पृष्ठ क्र. 5-6

दशपुर अभिलेख के रेशम  
व्यापारी  
दिवाकर शुक्ल

पृष्ठ क्र. 7

भोजराज की चम्पू काव्य  
रामायण  
रामशंकर चौहान

पृष्ठ क्र. 8

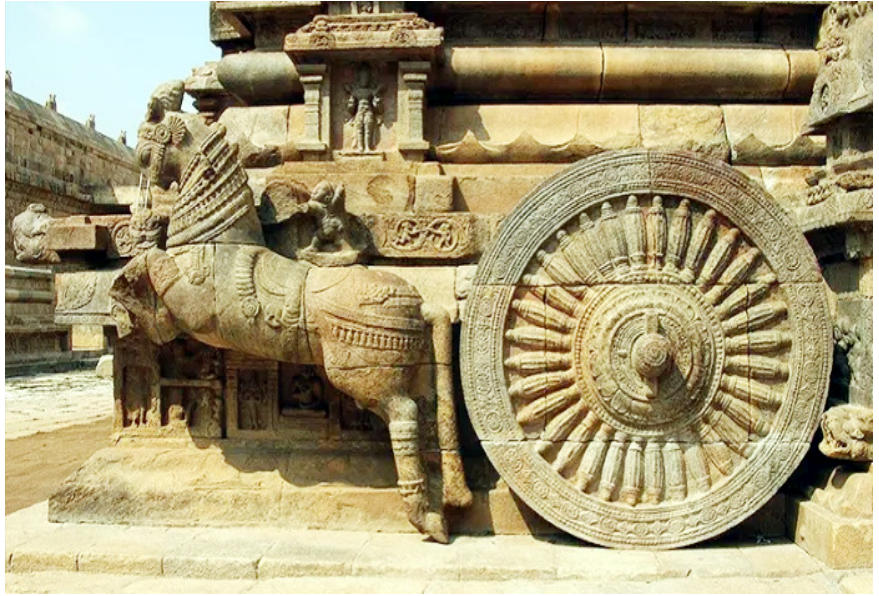
राजनीति विषयक सजगता  
और मुद्राराक्षस  
मिथिलेश यादव

नहीं स्वीकारता था। ई.पू. छठी शताब्दी के दौरान महान् भारतीय दार्शनिकों ने जीवन के अर्थ को, न्याय और सुख की ओर मानवजाति के पथ की खोज की। उन्होंने तर्कशास्त्र रूपी औजार बनाया, जो तब से विज्ञान की सेवा कर रहा है। विद्या और विद्वानों का समाज में शीर्षस्थ स्थान नवाते थे, उन्हें अपना संरक्षण प्रदान करते तथा राजदरबार में उन्हें उच्च पद प्रदान करते थे। त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) की अवधारणा विकसित हुई। मौर्यकाल में भारत का प्रथम राजनीतिक मानचित्र जो तैयार हुआ उसका महत्व थोड़ा बहुत

अदल-बदल के साथ आज भी बना हुआ है। केन्द्रीय और प्रान्तीय प्रशासन की जानकारी इसी समय से होती है। खनिज पदार्थों पर इसी समय से सरकारी नियंत्रण स्थापित हुआ। इसी समय अन्तर्देशीय मानचित्र पर पाटलिपुत्र को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। योग्यता एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर अधिकारियों की नियुक्ति की परम्परा विकसित हुई। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र आज भी विश्व का एक प्रतिष्ठित कूटनीतिशास्त्र है। बौद्ध धर्म इसी काल में विश्व धर्म हुआ। इस काल

में निर्मित स्तम्भ एवं स्तूप आज भी प्रमुख राष्ट्रीय धरोहर हैं। संस्कृति एवं परम्परा को अमरता प्रदान करने में मौर्यकाल सबसे आगे है। इस काल में अच्छे किस्म का लोहा तैयार करने की तकनीक विकसित हुई। भारतीय इतिहास की जानकारी जिन विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरणों से होती है उनमें मेगास्थनीज प्रथम था। चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में राजदूत बनकर वह भारत आया था।

ईरान, यूनान और भारतीय संस्कृतियों का सम्मिलन और पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ। भारतीय कला को काठ, मिट्टी, ईट, पुआल, गोबर तथा अन्य अस्थायी सामग्रियों से बाहर निकालकर नवीन और स्थायी रूप प्रदान किया गया। अस्त्र-शस्त्र तकनीक प्रथम बार विकसित हुई। जामदग्न्य एक ऐसा स्थित युद्धयंत्र था जिसमें बीच के छेद से बड़े-बड़े गोले निकलते थे। वैदिक समाज व्यवस्था के विपरीत मौर्यकालीन शासक गैर क्षत्रिय थे। मौर्यकाल में सरकार की ओर से नहरों एवं नदियों पर सेतु बनाने की परम्परा विकसित हुई। इसी समय से दो घरों के बीच एक हाथ या एक फोट का फासला रखना आवश्यक और कानूनी हो गया। बाहर की ओर दरवाजा या खिड़की बनवाकर पड़ोसियों को कष्ट पहुँचाना, रास्ता रोकना, पानी निकालने का ठीक प्रबन्ध न करना, पानी से दूसरे की दीवार को नुकसान पहुँचाना, पेशाब पैखाने की रुकावट डालना आदि दंडनीय अपराध माने जाने लगे। मदिरा बनाने की जिन चार



रासायनिक विधियों का वर्णन अर्थशास्त्र में किया गया है उनका महत्व आज भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रथम महिला शल्य चिकित्सक के रूप में सम्राट अशोक की रानी तिष्यरक्षिता की जानकारी मिलती है। अंगरक्षिकाओं के रूप में स्त्रियों को नियुक्त करने की प्रथा चन्द्रगुप्त मौर्य के काल से प्रारम्भ हुई। चाणक्य ने प्रथम बार कहा, 'विज्ञान मनुष्य को भयमुक्त बनाता है।' गुप्तचरी का काम करने के लिए स्त्रियों

नियुक्त की जाती थी और आधुनिक गुप्तचर विभाग इसका समर्थक है। स्त्रीधन की प्रारम्भिक चर्चा अर्थशास्त्र में की गई जिसे आज भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आधुनिक हिन्दू धर्म का स्वरूप वैदिक धर्म पर आधारित है। वैदिक धर्म का रूप कालक्रमानुसार बदलता रहा। शुंगकाल में वैदिककाल की धार्मिक प्रक्रिया नए रूप में दिखाई देने लगी। ब्राह्मण धर्म के रूप में इसकी लोकप्रियता बढ़ी। इस काल में जंगल में रहकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले एवं शिष्यों के बीच ज्ञान वितरण करनेवाले श्रोत्रिय ब्राह्मणों का महत्व घटा। धर्म के साथ-साथ मौर्यकाल के अन्तिम चरण से ब्राह्मण राजनीति पर अपना प्रभाव स्थापित करने लगे। उनका यह प्रयास वैदिक धर्म-विरोधी था। ब्राह्मण पुष्यमित्र शुंग के प्रयास के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म में नवीन तत्व पाए जाने लगे। पतंजलि इस काल के प्रसिद्ध विद्वान थे। उन्होंने महाभाष्य की रचना की। आधुनिक भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ करने में शुंगकाल का योगदान रहा है। इस काल में निर्मित भरहुत और साँची के बौद्ध स्तूपों की वेदिकाओं पर कला के अनेक अलंकरण, देव, मानव, पशु, पक्षी जीवन्त रूप में अंकित हुई। भरहुत की कला शैली विनम्रता और सरलता से प्रभावित है। भरहुत का कलाकार मानव आकृति बनाने लगा। भरहुत तथा बोधगया की नक्काशियों व सूर्य, लक्ष्मी और इन्द्र तथा वृक्ष देवताओं, नागों तथा अप्सराओं एवं किन्नरों को एक साथ प्रस्तुत किया गया।

## अस्त्र-शस्त्र और सामरिक शक्ति का बोध

अमित कुमार बिसेन

युद्ध इतिहास का अध्ययन करने पर एक सबसे प्रमुख तथ्य जो उजागर होता है, वह यह है कि युद्ध और शांति का कथानक जिस रूप में सामने लायें उसमें 'शस्त्र' एक चमचमाते हुए सितारे की भाँति हरकाल में जगमगाता रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शांति और युद्ध दोनों ही कालों में शस्त्रों की धूम, उपयोगिता और प्रभाव यथावत बना रहा है। आज शांति की रक्षा तभी प्रभावी ढंग में कर सकते हैं जब आप शांति तोड़ने वालों की तुलना में शक्तिशाली हो। 'ऋषियों को भी सिद्धि तभी तप में मिलती है जब पहरे पर स्वयं धनुर्धर राम खड़े होते हैं।'

शास्त्रों के बिना शांति की कल्पना आप शांति काल में भी नहीं कर सकते। रामायण एवं महाभारत कालीन युद्धों से लेकर आज तक के सभी युद्धों में प्रयुक्त किये गये तरह-तरह के हथियारों ने मानव जाति का ध्यान न केवल अपनी ओर आकर्षित किया है। आधुनिक काल के अस्त्र विज्ञान पर आधारित हैं। किसी भी शस्त्र की विशेषताएँ उस शस्त्र की सामरिक शक्ति तथा परिधि का बोध कराती है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी शस्त्र की सामरिक शक्ति तथा परिधि उसकी विशेषता प्रकट करती है। शास्त्रों की विशिष्टताएँ ही वह

मापदण्ड होती है जो उसके कार्य पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट करती है कि उसे किस कार्य (आक्रमण या सुरक्षा) के लिए किस प्रकार प्रयोग में लाया जा सकता है। अपनी विशिष्टता एवं गुणों के कारण प्रत्येक काल में कोई न कोई शस्त्र अपना ऐसा स्थान बनाये रखने में सफल हुआ है जिसके आधार पर यह विश्वास किया जाने लाग है युद्ध में विजय अथवा पराजय का निर्णय इस शस्त्र के ही द्वारा सम्पन्न होगा। प्राचीन आर्यावर्त के आर्यपुरुष अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण थे। वेदों में 18 युद्ध कलाओं के विषयों पर मौलिक ज्ञान अर्जित है। प्राचीन वैदिक काल में आज के सभी तरह के आधुनिक अस्त्र-शस्त्र थे। इसका उल्लेख वेदों में मिलता है। उस काल की तकनीक आज के काल से भिन्न थी लेकिन अस्त्रों की मारक क्षमता उतनी ही थी जितनी कि आज के काल के अस्त्रों की है। दो प्रकार के संहारक होते हैं:- अस्त्र और शस्त्र। 'अस्त्र' उसे

कहते थे, जो किसी मंत्र या किसी यंत्र द्वारा संचालित होते थे। मंत्र और यंत्र द्वारा फेंके जाने वाले अस्त्र बहुत ही भयानक होते थे। इनसे चारों तरफ हाहाकार मच जाता था। जैसे वर्तमान में यंत्र से फेंके जाने वाले अस्त्र तोप होती है। मंत्र से जैसे ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, पर्जन्यास्त्र आदि। शस्त्र हाथों से चलाए जाने के कारण इन्हें हथियार कहा जाता है। हथियार दो प्रकार के होते हैं: औजार और हाथ के हथियार। यंत्र अस्त्र के अंतर्गत शक्ति, ताम्र, पाश, बाण सायक, शण, बाण, परिघ, भिन्दिपाल, नाराच आदि होते थे। हस्तहथियारों में ऋषि, गदा, चक्र, वज्र,



त्रिशूल, असि, खंजर, खप्पर, खड्ग, चंद्रहास, फरसा, मुशल, परशु, कूट, शण, पत्तिश, वशी, वज्र, बर्च, कुलहड़ा, चाकू, भुशुदि आदि हैं। प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है कि उन्होंने अध्यात्म ज्ञान के साथ-साथ आतताइयों और दुष्टों के दमन के लिये सभी अस्त्र-शस्त्रों की भी सृष्टि की थी। आर्यों की यह शक्ति धर्म स्थापना में सहायक होती थी। रामायण और महाभारत में दिव्यास्त्रों का जिस प्रकार से वर्णन है उससे प्रकट है कि उस समय के समाज में इनका होना उतनी ही साधारण बात थी जितनी साधारण बात आजकल के समय में ज्ञान का होना है। यानी दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन होना कौतुक का विषय था आश्चर्य का नहीं। राजाओं के बीच युद्ध होना और उनमें दिव्यास्त्रों का प्रयोग होना साधारण बात थी। यह बात दूसरी थी कि दिव्यास्त्रों के प्रयोग से बहुत तबाही नहीं होती थी। इसलिए कि दिव्यास्त्रों के ज्ञाता योद्धाओं की अपनी आचार संहिता थी। वे इनका

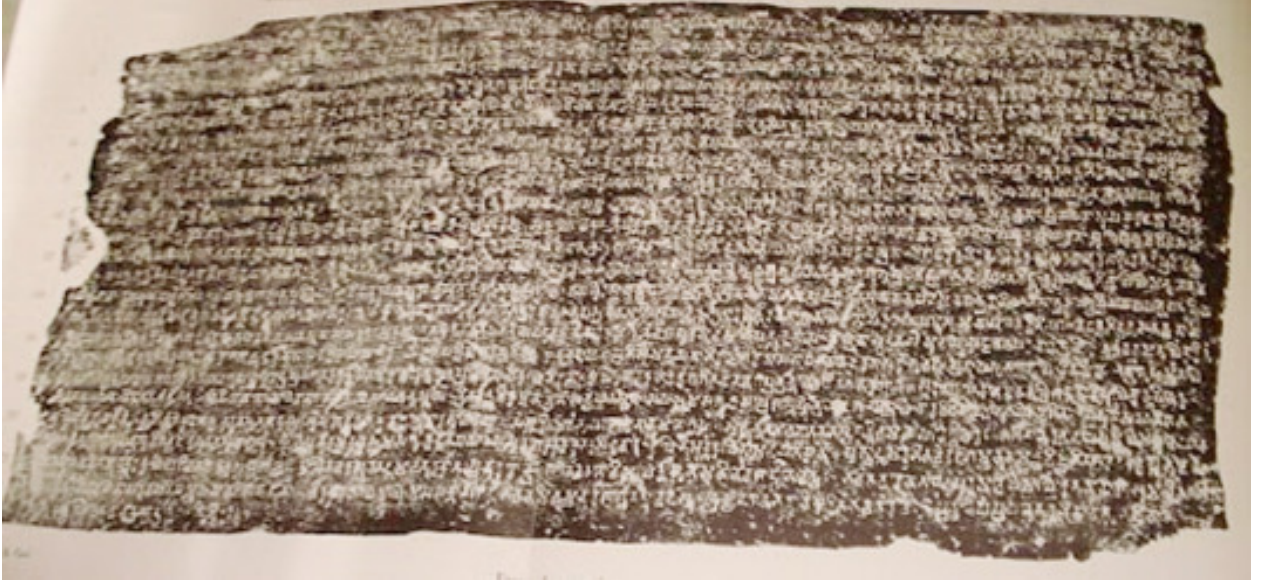




प्रयोग या तो दिव्यास्त्र के ज्ञाताओं के विरुद्ध करते थे या घोर संकट के समय ही करते थे और अपना प्रयोजन पूरा करने के बाद दिव्यास्त्र को वापस भी ले लेते थे। उसी व्यक्ति को दिव्यास्त्र दिया जाता था जिससे इस परम्परागत आचार संहिता का पालन करने की आशा की जा सके। यह उल्लेख आता है कि द्रोणाचार्य ने झिझक के साथ अश्वत्थामा को ब्रह्मास्त्र दिया था और कर्ण को देने से इंकार कर दिया था। उस समय योद्धाओं के पराक्रम का आकलन अस्त्र चलाने में उनके कौशल से ही नहीं होता था अपितु दिव्यास्त्रों के ज्ञान से भी होता था। अतः यह निर्विवाद है कि उस समय दिव्यास्त्र होते थे। पूरे महाभारत में दिव्यास्त्रों के प्रयोग के अनगिनत उदाहरण हैं। सबसे प्रसिद्ध उदाहरण तो वह घटना है जब पाण्डवपुत्रों की हत्या के बाद पाण्डवों को अपना पीछा करते देखकर अश्वत्थामा ने पाण्डवों को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। यह देखकर अर्जुन ने उसके निवारण के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा। दोनों ब्रह्मास्त्रों के एक दूसरे से टकराने से पहले ही नारद और व्यास दोनों दिव्यास्त्रों के बीच में खड़े हो गये और अपनी शक्ति से उन्होंने इस टक्कर को रोक दिया। उन्होंने यह कहते हुए दोनों वीरों को ब्रह्मास्त्र वापस लेने को कहा कि इस टक्कर से संसार में बड़ी तबाही होगी। उनकी बात मानकर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया पर अश्वत्थामा ने इसमें असमर्थता जता दी। (उसकी ब्रह्मास्त्र की शिक्षा इस योग्य नहीं थी।) इस पर उसे ब्रह्मास्त्र का लक्ष्य बदलने को कहा गया। तब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का नया लक्ष्य पाण्डवों के गर्भस्थ वंशधर अर्थात् परीक्षित को बनाया। (इसी के प्रभाव से परीक्षित मरा हुआ पैदा हुआ था।) यह दिव्यास्त्र के प्रयोग के नियमों का खुला उल्लंघन था और इसी से नाराज होकर कृष्ण ने अश्वत्थामा को तीन हजार वर्षों तक अपने घावों के साथ भटकने का शाप दिया। पुराणों के अनुसार जिन हथियारों को मंत्रों के जरिए दूर से दुश्मन पर हमला किया जाता है वह अस्त्र कहलाते हैं। ये अग्नि, गैस, विद्युत तथा यांत्रिक उपायों से संचालित होते थे। गरुडास्त्र, आग्नेयास्त्र, ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, महादेव का त्रिशूल, भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र आदि अस्त्र की श्रेणी में आते हैं। वहीं जो हथियार हाथों से चलाए जाते हैं, यानी कि जिसे हाथ में पकड़कर शत्रु पर प्रहार किया जाता है वह शस्त्र कहलाते हैं। तलवार, गदा, परशु, भाला, आदि शस्त्र के अंतर्गत आते हैं। ब्रह्मास्त्र को परमाणु हथियार के समान घात माना जाता है। ये ब्रह्म देव का महा शक्तिशाली अस्त्र था। कहते हैं कि महाभारत में अर्जुन, कर्ण, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र चलाने का ज्ञान रखते थे। महाभारत युद्ध में जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया गया तब गर्भ में पल रहे शिशुओं तक की मौत हो गई थी। अश्वत्थामा इसे चलाना जानता था लेकिन उसे इसे वापस लेने की जानकारी नहीं थी। शास्त्रों में बताया गया है इस अस्त्र के विनाश को तभी रोका जा सकता है जब जवाब में दूसरा ब्रह्मास्त्र छोड़ा जाए। महाभारत के सौप्तिक पर्व अध्याय में ब्रह्मास्त्र के बारे में लिखा है।

अश्वत्थामा ने पाण्डवों को खत्म करने के लिए ब्रह्मास्त्र को सक्रिय कर लिया था। उस समय चारों ओर आग लग गई थी। ऐसा लग रहा था जैसे ये आग पूरी दुनिया को ही जला देगी। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को रोकने के लिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। अब दोनों ब्रह्मास्त्रों से आग की बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं। आकाश से बड़ी-बड़ी उल्काएँ टूटकर धरती पर गिर रही थीं। आकाश में भी आग दिखाई दे रही थी। पर्वत, पेड़-पौधों के साथ धरती भी हिल रही थी। अर्जुन अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र आमने-सामने आ गए तो नारद मुनि और वेद व्यास वहाँ प्रकट हो गए और दोनों दिव्यास्त्रों के बीच में खड़े हो गए। कोई भी अस्त्र-शस्त्र नारद मुनि और वेद व्यास को पार करके आगे नहीं जा सकता था। इन दोनों की वजह से ब्रह्मास्त्र आपस में टकरा नहीं पा रहे थे। उन्होंने अर्जुन और अश्वत्थामा को समझाया कि अगर ये दोनों ब्रह्मास्त्र टकरा गए तो पूरा संसार तबाह हो जाएगा। आज से पहले किसी ने भी इस तरह ब्रह्मास्त्र का इस्तेमाल नहीं किया है। आप दोनों इन्हें तुरंत वापस ले लें। अर्जुन ने तो अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया, लेकिन अश्वत्थामा ये विद्या नहीं जानते थे। उन्होंने ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ पर छोड़ दिया। श्रीकृष्ण ने अपनी माया से उस ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के शिशु को बचा लिया था। बाद में इस बच्चे का नाम परीक्षित रखा गया। अहिर्बुध्न्य संहिता के मुताबिक ब्रह्मास्त्र के इस्तेमाल से दुनिया का सफाया हो सकता था। ब्रह्मास्त्र यानी ब्रह्मा का अस्त्र। इसमें ब्रह्मा की सभी शक्तियाँ थीं। ब्रह्मास्त्र चलाने की विद्या श्रीराम, लक्ष्मण, श्रीकृष्ण, परशुराम, द्रोणाचार्य, कर्ण भी जानते थे। लक्ष्मण को श्रीराम ने ब्रह्मास्त्र चलाने से रोक दिया था, युद्ध में कर्ण ब्रह्मास्त्र चलाने की विद्या भूल गये थे। अश्वत्थामा ने पाण्डवों पर ब्रह्मास्त्र चलाया तो अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र से उसका जवाब दिया था। श्रीराम, श्रीकृष्ण, परशुराम और द्रोणाचार्य इसकी विनाशक क्षमता जानते थे, इस वजह से इन्होंने कभी भी ब्रह्मास्त्र इस्तेमाल नहीं किया। मंत्र द्वारा संचालित अस्त्रों को दिव्यास्त्र कहा जाता है। प्राचीनकाल में दिव्यास्त्र चलाने की विद्या कुछ खास लोगों को ही सिखायी जाती थी। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र चलाने के लिए परशुराम से शिक्षा ली थी। इस तरह द्रोणाचार्य ने कौरवों सहित पाँचों पाण्डवों को शिक्षा दी थी।

भारतीय प्राच्य इतिहास ग्रंथों और पुराणों में योद्धाओं के साथ ही अनेक तरह के अस्त्र और शस्त्रों का जो उल्लेख आता है वह अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत में युद्धकला के विकास के साथ ही शस्त्र निर्माण और उसका संचालन करना एक विशेष युद्धकला मानी गयी है। कुछ अस्त्र-शस्त्र देवाताओं और दानवों द्वारा ही संचालित होते थे यह विशेष अस्त्र-शस्त्र उन्होंने अपने दिव्य प्रताप और इच्छा शक्ति से विकसित किये थे। दुनिया के इतिहास में भारतीय युद्धकला और कौशल सबसे भिन्न परिलक्षित होता रहा है। युद्ध शस्त्र और उनका संचालन महाभारत से लगाकर रामायण जैसे भारतीय महाकाव्यों में विशेषरूप से उल्लेखनीय है।



## दशपुर अभिलेख के रेशम व्यापारी

दिवाकर शुक्ल

दशपुर अवंति (पश्चिमी मालवा) का प्राचीन नगर था, जो मध्यप्रदेश के ग्वालियर क्षेत्र में उस नाम के नगर से कुछ दूर उत्तर पश्चिम में स्थित आधुनिक मंदसौर है। भारतीय इतिहास के प्राचीन युग में उत्तर भारत में जब भी साम्राज्य स्थापित हुए, अवंति प्रायः उनका एक प्रांत रहा। दशपुर उसी में पड़ता था और कभी-कभी वहाँ भी शासन की एक इकाई होती थी। दशपुर पर कई सदियों तक आदिवासी सत्ता कायम रही, इस क्षेत्र में भील राजाओं ने दीर्घकाल तक शासन किया। दशपुर का कोई मूल्यवान ऐतिहासिक उल्लेख गुप्तयुग के पहले का नहीं मिलता। कुमारगुप्त प्रथम तथा द्वितीय और बंधुवर्मा का मंदसौर में वि.सं. 493 और वि.सं. 529 का वत्सभट्टि विरचित लेख मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि जब बंधुवर्मा कुमारगुप्त प्रथम का दशपुर में प्रतिनिधि था, वहाँ के तंतुवायों ने एक सूर्यमंदिर का निर्माण कराया तथा उसके व्यय का प्रबंध किया। 36 वर्षों बाद उस मंदिर के पुनरुद्धार की आवश्यकता हुई और वह कुमारगुप्त द्वितीय के समय संपन्न हुआ। बंधुवर्मा संभवतः इस सारी अवधि के बीच गुप्त सम्राटों का दशपुर में क्षेत्रीय शासक रहा। थोड़े दिनों बाद हूणों ने उसके सारे पार्श्ववर्ती प्रदेशों को रौंद डाला और गुप्तों का शासन वहाँ से समाप्त हो गया। ग्वालियर में मिलनेवाले मिहिरकुल के सिक्कों से ये प्रतीत होता है कि दशपुर का प्रदेश हूणों के अधिकार में चला गया। किंतु उनकी सफलता स्थायी न थी और यशोधर्मन् विष्णुवर्धन् नामक औलिकरवंशी एक नवोदित राजा ने मिहिरकुल को परास्त किया। मंदसौर से वि.सं. 589 का यशोधर्मा का वासुल रचित एक अभिलेख मिला है, जिसमें उसे जनेंद्र, नराधिपति, सम्राट्, राजाधिराज, परमेश्वर उपाधियाँ दी गई हैं। उसका यह

भी दावा है कि जिन प्रदेशों को गुप्त सम्राट् भी नहीं भोग सके, उन सबको उसने जीता और मिहिरकुल को विवश होकर पुष्पमालाओं से युक्त अपने सिर को उसके दोनों पैरों पर रखकर उसकी पूजा करनी पड़ी। यशोधर्मा मध्यभारत से होकर उत्तर प्रदेश पहुँचा और पंजाब में मिहिरकुल की शक्ति को नष्ट करता हुआ सारा गुप्त साम्राज्य रौंद डाला। पूर्व में लौहित्य (उत्तरी पूर्वी भारतीय सीमा की लोहित नदी) से प्रारंभ कर हिमालय की चोटियों को छूते हुए पश्चिम पयोधि तक तथा दक्षिण-पूर्व से महेंद्र पर्वत तक के सारे क्षेत्र को स्वायत्त करने का उसने दावा किया है। दशपुर को यशोधर्मा ने अपनी राजधानी बनाया। वर्धन्नामांत दशपुर के कुछ अन्य राजाओं की सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। मंदसौर से ही अभी हाल में प्राप्त होनेवाले एक अभिलेख से आदित्यवर्धन् तथा वराहमिहिर की बृहत्संहिता (छठी शती) से अवंति के महाराजाधिराज द्रव्यवर्धन की जानकारी होती है। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त द्वितीय के शासनकाल (472 ई.) का एक प्रसिद्ध अभिलेख मंदसौर से प्राप्त हुआ था, जिसमें लाट देश के रेशम के व्यापारियों का दशपुर में आकर बस जाने का वर्णन है। इन्होंने दशपुर में एक सूर्य के मंदिर का निर्माण करवाया था। बाद में इसका जीर्णोद्धार हुआ और यह अभिलेख उसी समय सुंदर साहित्यिक संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण करवाया गया था। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था पर इस अभिलेख से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वत्सभट्टि द्वारा प्रणीत इस सुंदर अभिलेख का कुछ भाग इस प्रकार है— वे रेशम बुनने वाले शिल्पी (फूलों के भार से झुके सुंदर वृक्षों, देवालियों और सभा विहारों के कारण सुंदर और तरुवराच्छादित पर्वतों से छाए हुए लाट देश से आकर) दशपुर में, वहाँ के राजा के गुणों से

आकृष्ट होकर रास्ते के कष्टों की परवाह न करते हुए, बंधुबंधव सहित बस गए। यह नगर (दशपुर) उस भूमि का तिलक है, जो मत्तगजों के दान बिंदुओं से सिक्त शैलों वाले सहस्रों पहाड़ों से अलंकृत है और फूलों के भार से अवनत वृक्षों से सजी हुई है, जो तट पर के वृक्षों से गिरे हुए अनेक पुष्पों से रंग-बिरंगे जल वाले और प्रफुल्ल कमलों से भरे और कारंडव पक्षियों से संकुल सरोवरों से विभूषित हैं, जो विलोल लहरियों से दोलायमान कमलों से गिरते हुए पराग से पीले रंगे हुए हंसों और अपने केसर के भार से विनम्र पदमों से सुशोभित हैं, जहाँ फूलों के भार से विनत वृक्षों से संपन्न और मदप्रगल्भ भ्रमरों से गुंजित और निरन्तर गतिशील पौरांगनाओं से समलंकृत उद्यान हैं और जहाँ अत्यधिक श्वेत और तुंग भवनों के ऊपर हिलती हुई पताकाएँ और भीतर स्त्रियाँ इस प्रकार शोभायमान हैं, मानों श्वेत बादलों के खंडों में तडिल्लत जगमगाती हो, इत्यादि। यहाँ की एक शिलालेख में यह इंगित है कि

तारुण्य कान्यु पछितौ पि सुवर्ण हार  
ताम्बूल पुष्प विधिना समल को पि।  
नारी जनः प्रिय भूपति न तावदस्या  
यावन्न पट्टमाय वस्त्र युनानि निधत्ते।।

इसका अर्थ है कि आपका शारीरिक यौवन कितना ही अच्छा क्यों न हो, आपने भले ही फूलों की माला, अच्छे आभूषण ही क्यों न पहने हो, भले ही आपके ताम्बूल के समान होंट हो, पर एक नारी आपके पास तब तक नहीं आएगी, जब तक आप अच्छे वस्त्र धारण नहीं करते हैं। दशपुर से 533 ई. का एक अन्य अभिलेख, जिसका संबंध मालवाधिपति यशोवर्मन से है, सौंधी ग्राम के पास एक कूपशिला पर अंकित पाया गया था। यह अभिलेख भी सुंदर काव्यमयी भाषा में रचा गया है। इसमें राज्यमंत्री अभयदत्त की स्मृति में एक कूप बनाये जाने का उल्लेख है।

अभयदत्त को पारियात्र और समुद्र से घिरे हुए राज्य का मंत्री बताया गया है। दशपुर में यशोवर्मन के काल के विजय स्तंभों के अवशेष भी हैं, जो उसने हूणों पर प्राप्त विजय की स्मृति में निर्मित करवाए थे। एक स्तंभ के अभिलेख में पराजित हूणराज मिहिरकुल द्वारा की गई यशोवर्मन की सेवा तथा अर्चना का वर्णन है। इनमें से प्रत्येक स्तंभ का व्यास तीन फुट तीन इंच, ऊँचाई 40 फुट से अधिक और वजन लगभग 5400 मन था। मंदसौर के आसपास 100 मील तक वह पत्थर उपलब्ध नहीं है, जिसके ये स्तंभ बने हैं।

भौगोलिक दृष्टि से भी इसकी स्थिति महत्वपूर्ण थी। एक प्रमुख मार्ग प्रयाग (इलाहाबाद) के निकट कौशाम्बी से एरण, विदिशा एवं उज्जयिनी (उज्जैन), अपरक (आवरा) एवं दशपुर (मन्दसौर) होता हुआ मध्यमिका (नगरी) जाता था। दूसरा मार्ग दशपुर से अँवलेश्वर होता हुआ पश्चिमी तट पर स्थित भरुकच्छ (भड़ौच) और सूर्पारक (सोपारा) जाता था। व्यापारिक मार्गों पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र में वाणिज्य, धर्म, दर्शन भाषा एवं साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ।

प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में दशपुर का उल्लेख किया गया है। मेघदूत का मेघ आम्रकूट या रामगिरि से विदिशा, उज्जयिनी और देवगिरि होता हुआ चर्मण्वती (चम्बल) को पार कर दशपुर पहुँचा था। कालिदास ने मेघ के मार्ग में आने वाले विशिष्ट स्थलों का विशद वर्णन किया है। इसमें महत्वपूर्ण वर्णन उज्जयिनी में महाकाल तथा देवगिरि में कार्तिकेय के मन्दिरों से सम्बन्धित हैं।

कालिदास ने मेघदूत में कहा है कि यहाँ की स्त्रियाँ इतनी सुंदर हैं कि आप जमीन पर देख ही नहीं सकते। उनकी मोहकता देखकर आपका ध्यान कहीं ओर जाएगा ही नहीं। यहाँ के राजा हुए हैं महाराजा यशोधर्मन जिन्होंने हूणों के आक्रमण से बचाया था। अभिलेखों में दशपुर का सर्वप्रथम उल्लेख द्वितीय शताब्दी ई. पू. के अँवलेश्वर स्तम्भ अभिलेख में है। इससे ज्ञात होता है कि संभवतः दशपुर इस काल में स्वतंत्र राज्य था। दशपुर नगर के वर्णन में प्रशस्तिकार पर समकालीन अन्य कवियों की रचनाओं का प्रभाव लक्षित होता है। दशपुर का जिस रूप में वत्सभट्टि ने वर्णन किया है, उस पर स्पष्टतः कालिदास के अलका वर्णन की छाया है। इस नगर का निर्माण योजनाबद्ध रूप से हुआ था। इसकी झीलों में कमल खिले थे तथा उनमें कारण्डव पंछी तैरते थे। तट पर स्थित वृक्षों एवं पुष्पों के कारण झीलों का पानी रंग-बिरंगा दिखाई पड़ता था। इस नगर के सरोवरों में राजहंस तैरते हुए दृष्टिगोचर होते थे, जिनका शरीर कमल की पंखुड़ियों के पराग से भूरा हो गया लगता था तथा अन्यत्र कमल अपने पराग के कारण झुक गये दिखाई देते थे।

यहाँ की सुन्दर वाटिकाओं में वृक्ष पुष्पभार से अवनत थे। मतवाले भौरों की गुंजन तथा नगर वधुओं के ललित पदगति से नगर की शोभा द्विगुणित हो उठती थी। इन प्रकार यह नगर झील, सरोवरों और उद्यानों से युक्त था। ये झील, सरोवर नगर की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही नगर की श्रीवृद्धि भी करते थे। नगर के भवन नगर पथों के दोनों ओर पंक्तिबद्ध रूप से बने रहे होंगे। इन भवनों पर पताकार्ये लहराती थीं। उच्च अट्टालिकाओं तथा उनमें रहने वाली कोमल स्त्रियों के द्वारा नगर का सौन्दर्य बढ़ गया था। जिस समय इन उच्च भवनों पर विद्युल्लता का प्रतिबिम्ब पड़ता था, उस समय उनकी कान्ति अनुपम हो जाती थी। ये अट्टालिकाएँ अपनी अतिशय ऊँचाई के कारण कैलाश पर्वत का स्मरण कराती थीं। यहाँ के उद्यानों में कदली-दूम शोभायमान थे। यहाँ के भवन सुन्दर चित्रों से अलंकृत थे तथा उनमें संगीत की प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित इन भवनों के अनेक तलों को देखने से ऐसा लगता था, मानो वे पृथ्वी को फाड़कर ऊपर उठे विमानों की पंक्ति हों। दशपुर के इस प्रकार के वर्णन से नगर-वास्तु के विविध अंगों, भवन-विन्यास तथा चित्र और संगीत जैसे ललित कलाओं का परिचय मिलता है। जिससे उस युग के लोगों में कला के प्रति सुरुचिता का भान होता है।

## भोजराज की चम्पू काव्य रामायण

रामशंकर चौहान

चम्पू रामायण भोजराज द्वारा रचित भगवान श्रीराम की कथाओं से सम्बन्धित ग्रंथ है। राम तथा कृष्ण के चरित का अवलंबन कर अनेक प्रतिभाशाली कवियों ने अपनी प्रतिभा का रुचि प्रदर्शन किया है। चम्पू काव्यों भोजराज (11वीं शती) का 'रामायण चम्पू' बेहद लोकप्रिय है। भोजराज ने 'रामायण चम्पू' की रचना किष्किंधाकांड तक ही की थी, जिसकी पूर्ति लक्ष्मण भट्ट ने युद्धकांड तक रचना की है। भोज ने न तो रामायण की कथावस्तु में कोई परिवर्तन किया है न ही पात्रों के चरित्रों में। वाल्मीकि रामायण में विद्यमान विविध पात्रों के गुण-दोष चम्पू रामायण में भी उपलब्ध है। यदि कोई अन्तर है तो वह केवल इतना ही कि इसमें कथावस्तु राम के लंका से अयोध्या लौटने पर ही समाप्त हो जाती है। चम्पू शैली के अनुरूप इस काव्य में गद्य तथा पद्य का निरपेक्ष भाव से उपयोग किया गया है। फिर भी इसमें गद्य की अपेक्षा पाय भाग अधिक है। गद्य शैली समासबहुल है। पद्य भाग में कोई विशिष्ट शैली दृष्टिगोचर नहीं होती। गंगावतार के कथानक में पुराणों में प्रयुक्त शैली का प्रयोग है तो राजा दशरथ और कैकेयी के संवाद में उत्कृष्ट काव्य शैली के दर्शन होते हैं। किन्हीं स्थलों पर माघ की शैली का स्मरण हो जाता है तो कहीं कालिदास की शंका हो जाती है और अन्यत्र श्रीहर्ष की पदावली के चमत्कार की अनुभूति होती है।

तात्पर्य यह है कि कवि किसी रीति विशेष का अवलम्ब कर उसे ही सर्वत्र अंगीकार करने का इच्छुक नहीं। वह तो उक्ति में वैचित्र्य लाने की दृष्टि से सबका अनुसरण करने के लिये कटिबद्ध है। यथार्थत उक्ति सिद्धान्त के परिपोषक भोज उक्ति से इतने प्रभावित हैं कि उन्होंने चम्पू रामायण में अन्य काव्य सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित काव्य के प्राणभूत रस, ध्वनि, गुण अथवा रीति आदि तत्त्वों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं अपितु रसादि की पुष्टि के लिए प्राप्त स्थलों में भी भावसृष्टि तक ही सीमित रहकर वे आगे बढ़ गये हैं। काव्यरसिक के रूप में भोज ने धमिले ख्याति अजित की। उसके उपलब्ध काव्यों में चम्पूरामायण का विद्वानों में विशेष आदर हुआ। बाणभट्ट की कादम्बरी के समान इस कृति को भी इसका रचयिता पूर्ण नहीं कर पाया था। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों के पूर्ण न हो पाने के कारणों में भेद हो सकता है। भोज का चम्पूरामायण सुन्दरकाण्डपर्यन्त हो प्राप्त होता है। यह स्थिति याज्ञ ही नहीं, प्राचीन काल में रही है। जिस प्रकार बाणभट्ट की कादम्बरी को पूर्ण करने के लिए उनका पुत्र पुलिन्दभट्ट प्रवृत्त हुआ, उसी प्रकार भोज की कृति को पूर्ण करने के लिए परवर्ती अनेक अनेक रसिकजन जुट पड़े और इस प्रकार इस ग्रन्थ के कई पूरक अंश बन गये। यह भी एक संयोग की बात है कि पूरक अंश के निर्माताओं ने केवल युद्धकाण्ड का ही निर्माण कर

भोजकृति को पूर्ण मान लिया। परन्तु धन्य कतिपय विद्वानों को तब भी अपूर्णता ही प्रतीत हुई और उन्होंने उत्तरकाण्ड की रचना कर ग्रन्थ की पूर्णता में सन्तोष पाया। इन पूरक अंगों में से लक्ष्मण कवि का युद्धकाण्ड सर्वप्राचीन है क्योंकि प्रायः टीकाकारों ने भोज के रामायण चम्पू के साथ ही लक्ष्मण कवि विरचित चम्पूरामायण की भी टीका की है।

गद्य और पद्य से समन्वित रचना, जो उच्छ्वासों में विभक्त हो तथा अंकित हो, वह चम्पू है। इसके उदाहरण स्वरूप हेमचन्द्र ने सुबन्धु को वासवदत्ता का नाम दिया, किन्तु प्रायः सभी आलंकारिकों ने वासवदत्ता को गद्यकाव्य का उदाहरण माना है। हेमचन्द्र का लक्षण 'नलचम्पू' के अनुसार ही है। वह सात उच्छ्वासों में विभक्त है। हरचरण सरोजद्वन्द्व से अंकित है। इसी प्रकार से यशस्तिलक-चम्पू भी है— जो आठ आश्वासों में विभक्त है और आश्वासान्त में जिन-स्तुति में अंकित है। रामायण-चम्पू पंचकाण्डों में सुष्ठु रूप से निबद्ध है तथा प्रत्येक काण्ड के आरंभ में वाल्मीकि रामायण के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित किये जाने वाले प्रथम पद से अंकित है।

बाणभट्ट की शैली के भार को जिस प्रकार पुलिन्दभट्ट ने सफलता से बहन किया उसी प्रकार भोज की गरिमामयी चम्पू शैली को लक्ष्मण कवि ने अपने युद्धकाण्ड में यथावत् बनाये रखा। दोनों कवियों के काव्यों में अन्तर कर पाना कठिन है। प्रायः यही स्थिति अन्य कवियों की पूरक कृतियों की भी है। इन पूरक अंशों के निर्माताओं के विषय में विशिष्ट विवरण, प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्त में 'चम्पूरामायण के पूरक यशों के निर्माता' नामक परिशिष्ट में दिया गया है।

श्रव्य-काव्य के भेद के रूप में चम्पू-काव्य की गणना की जाती है। साहित्यिक विधा में वैशिष्ट्य का सृजन करने के लिए गद्यकाव्य और पद्यकाव्य का सम्मिश्रण हुआ। गद्य और पद्य का सम्मिश्रण चम्पू नाम से अभिहित ग्रन्थों के पूर्व के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है, किन्तु चम्पू-काव्य के लक्षणों से समन्वित चम्पू-काव्य की रचना दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से हुई। 'गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते' कहकर दण्डी ने चम्पू-काव्य का लक्षण दिया, इसी प्रकार का लक्षण विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में दिया। इन लक्षणों से चम्पू-काव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। चम्पू-काव्यकारों के काव्यों के आधार पर भी चम्पू-काव्य को किसी लक्षण की विशिष्ट सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। चम्पू रामायण महर्षि वाल्मीकि के द्वारा रचित रामायण के बाद सबसे तथ्य परख महाग्रन्थ है। महाराजा भोज वास्तु शास्त्र के जनक माने जाते हैं। समरान्गसुत्रधार ग्रन्थ वास्तु शास्त्र का सबसे प्रथम ज्ञात ग्रन्थ है। वे अत्यंत ज्ञानी, भाषाविद्, कवि और कलापारखी भी थे। उनके समय में कवियों को राज्य से आश्रय मिला था। सरस्वतीकंठाभरण उनकी प्रसिद्ध रचना है।

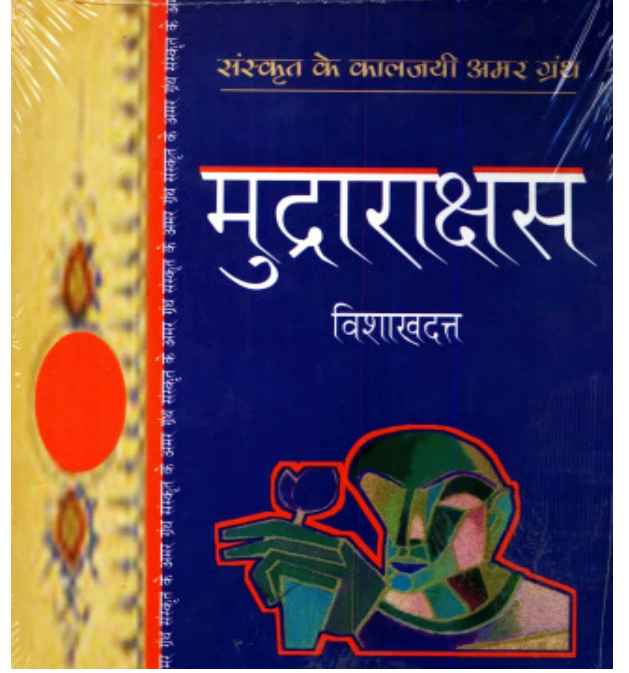


पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

## राजनीति विषयक सजगता और मुद्राराक्षस

“मुद्राराक्षस” संस्कृत का ऐतिहासिक नाटक है जिसके रचयिता “विशाखदत्त” हैं। इसकी रचना चौथी शताब्दी में हुई थी। इसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य संबंधी ख्यात वृत्त के आधार पर चाणक्य की राजनीतिक सफलताओं का अपूर्व विश्लेषण मिलता है। इस कृति की रचना पूर्ववर्ती संस्कृत नाट्य परंपरा से सर्वथा भिन्न रूप में हुई है— लेखक ने भावुकता, कल्पना आदि के स्थान पर जीवन, संघर्ष के यथार्थ अंकन पर बल दिया है। इस महत्वपूर्ण नाटक को हिंदी में सर्वप्रथम अनूदित करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को है। उनके बाद कुछ अन्य लेखकों ने भी इस कृति का अनुवाद किया, किंतु जो ख्याति भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद को प्राप्त हुई, वह किसी अन्य को नहीं मिल सकी। इसमें इतिहास और राजनीति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। इसमें नन्दवंश के नाश, चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण, राक्षस के सक्रिय विरोध, चाणक्य की राजनीति विषयक सजगता और अन्ततः राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रभुत्व की स्वीकृति का उल्लेख हुआ है। इसमें साहित्य और राजनीति के तत्त्वों का मणिकांचन योग मिलता है, जिसका कारण सम्भवतः यह है कि विशाखदत्त का जन्म राजकुल में हुआ था। वे सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र थे। “मुद्राराक्षस” की कुछ प्रतियों के अनुसार वे महाराज भास्कर दत्त के पुत्र थे। इस नाटक के रचना काल के विषय में तीव्र मतभेद हैं, अधिकांश विद्वान इसे चौथी-पाँचवी शती की रचना मानते हैं, किन्तु कुछ ने इसे सातवीं-आठवीं शती की कृति माना है। संस्कृत की भाँति हिन्दी में भी “मुद्राराक्षस” के कथानक को लोकप्रियता प्राप्त हुई है। विशाखदत्त अथवा विशाखदेव का काल-निर्णय अभी नहीं हो पाया है। वैसे, वे भास, कालिदास, हर्ष और भवभूति के परवर्ती नाटककार थे और प्रस्तुत नाटक की रचना अनुमानतः छठी से नवीं शताब्दी के मध्य हुई थी।

सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु अथवा भास्कर दत्त के पुत्र होने के नाते उनका राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था, फलतः “मुद्राराक्षस” का राजनीति प्रधान नाटक होना आकस्मिक संयोग नहीं है, वरन् इसमें लेखक की रुचि भी प्रतिफलित है। विशाखदत्त की दो अन्य रचनाओं— देवी चन्द्रगुप्तम्, तथा राघवानन्द नाटकम् का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी प्रसिद्धि का मूलाधार “मुद्राराक्षस” ही है। “मुद्राराक्षस” की कथावस्तु प्रख्यात है। इस नाटक के नामकरण का आधार यह घटना है— अपनी मुद्रा को अपने ही विरुद्ध प्रयुक्त होते हुए देखकर राक्षस का स्तब्ध अथवा विवश हो जाना। इसमें चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण के उपरान्त चाणक्य द्वारा राक्षस की राजनीतिक



चालों को विफल कर देने की कथा को सात अंकों में सुचारु रूप में व्यक्त किया गया है। नाटककार ने चाणक्य और राक्षस की योजना-प्रतियोजनाओं को पूर्ण राजनीतिक वैदग्ध्य के साथ उपस्थापित किया है। उन्होंने नाटकगत घटनाक्रम के आयोजन में स्वाभाविकता, जिज्ञासा और रोचकता की ओर उपयुक्त ध्यान दिया है। तत्कालीन राजनीतिज्ञों द्वारा राजतंत्र के संचालन के लिए किस प्रकार के उपायों का आश्रय लिया जाता था, इसका नाटक में रोचक विवरण मिलता है। चाणक्य के सहायकों ने रुचि-अरुचि अथवा स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति की चिन्ता न करते हुए अपने लिए निर्दिष्ट कार्यों का जिस तत्परता से निर्वाह किया, वह कार्य सम्बन्धी एकता का उत्तम उदाहरण है। घटनाओं की धारावाहिकता इस नाटक का प्रशंसनीय गुण है, क्योंकि षड्यन्त्र-प्रतिषड्यन्त्रों की योजना में कहीं भी व्याघात लक्षित नहीं होता। यद्यपि चाणक्य की कुटिल चालों का वर्णन होने से इसका कथानक जटिल है, किन्तु नाटककार ने इसे पूर्वापर क्रम-समन्वित रखने में अदभुत सफलता प्राप्त की है। इसमें कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों सन्धियों और वृत्तियों का नाटयशास्त्रविहित प्रयोग हुआ है। देवी चन्द्रगुप्तम् का उल्लेख रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने ‘नाट्यदर्पण’ में, भोज ने ‘शृंगारप्रकाश’ में और अभिनवगुप्त ने ‘नाटकशास्त्र’ की टीका में किया है।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए  
बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujain@gmail.com, vikramadityashodhpeth@gmail.com